

जैनतर्कशास्त्रमें हेतु-प्रयोग

डॉ० दरबारीलाल कोठिया

भूतपूर्व रीडर, जैन-बौद्धदर्शन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रमाणशास्त्रमें अनुमान प्रमाणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उससे उन पदार्थोंका ज्ञान किया जाता है जो इन्द्रियगम्य नहीं होते। अतः इन्द्रियागम्य सूक्ष्म, अतीत-अनागत और दूर पदार्थ अनुमेय हैं^१ और उनकी व्यवस्था अनुमानसे की जाती है। जहाँ किसी साधनसे किसी साध्यका ज्ञान किया जाता है उसे अनुमान कहा गया है।^२ इसे और भी सरल शब्दोंमें कहा जाय तो यों कह सकते हैं कि ज्ञातसे अज्ञातका ज्ञान करना अनुमान है। उदाहरणार्थ नदीकी बाढ़को देखकर अधिक वर्षाका ज्ञान, सूँड़को देखकर पानोंमें डूबे हाथीका ज्ञान, घुआँको अवगतकर अग्निका ज्ञान अनुमान है। इसे चार्वाकदर्शनको छोड़कर शेष सभी भारतीय दर्शनोंने माना है।

अनुमानके कितने अङ्ग (अवयव) हैं, इस विषयमें भारतीय दर्शन एकमत नहीं हैं। यों कमसे कम एक और अधिकसे-अधिक दश अवयवोंकी मान्यताएँ दर्शनशास्त्रमें मिलती हैं। एक अवयव बौद्ध तार्किक धर्मकीर्तिने^३ और दश अवयव सांख्यविद्वान् युक्तिदीपिकाकारने^४ स्वीकार किये हैं। जैन परम्परामें भी दश अवयव आचार्य भद्रबाहुने^५ माने हैं। यतः हेतुको सभी दार्शनिकोंने अङ्गीकार किया है और उसे प्रधान अङ्ग बतलाया है। अतः यहाँ इस हेतुका ही विशेष विचार किया जावेगा।

अनुमेयको सिद्ध करनेके लिए साधन (लिङ्ग) के रूपमें जिस वाक्यका प्रयोग किया जाता है वह हेतु कहलाता है।^६ साधन और हेतुमें यद्यपि साधारणतया अन्तर नहीं है और इसलिए उन्हें एक-दूसरेका पर्याय मान लिया जाता है। पर ध्यान देनेपर उनमें अन्तर पाया जाता है। वह अन्तर है वाच्य-वाचकका। साधन वाच्य है, क्योंकि वह कोई वस्तु होता है। और हेतु वाचक है, यतः उसके द्वारा वह कहा जाता है। अतएव 'साधनवचनं हेतुः' ऐसा कहा गया है।

अक्षपादने^७ हेतुका लक्षण बतलाते हुए लिखा है कि उदाहरणके साधर्म्य तथा वैधर्म्यसे साध्य (अनुमेय) को सिद्ध करना हेतु है। उनके इस हेतुलक्षणसे हेतुका प्रयोग दो तरहका सिद्ध होता है। एक साधर्म्य और

१. आप्तमी० का० ५।
२. साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्।—न्यायवि० द्वि० भा० २।१। ५० मु० ३।१४।
३. हेतुबिन्दु, पृ० ५५।
४. युक्तिदी० का० १ की भूमिका, पृ० ३ तथा का० ६, पृ० ४७-५१।
५. दशवै० नि० गा० ४९, ५०।
६. 'परमाणवः सन्ति स्कन्धान्यथानुपपत्तेः' इस अनुमान-प्रयोगमें अनुमेय 'परमाणुओं' को सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त साधन 'स्कन्ध अन्यथा नहीं हो सकते' हेतु है।
७. न्याय सू० १।१।३४, ३५।

विविध : २५९

दूसरा वैधर्म्य। साधर्म्यका अर्थ अन्वय है और वैधर्म्यका व्यतिरेक। साधर्म्य और वैधर्म्य अनुमेयसिद्धिमें हेतुके निर्दोषत्वको पुष्टकर उसे साधक बनाते हैं। व्याख्याकार वात्स्यायन^१ और उद्योतकरने इन^२ दोनों प्रयोगोंका समर्थन किया है। इन तार्किकोंके मतानुसार हेतुको साध्य (पक्ष) में तो रहना ही चाहिए, साधर्म्य उदाहरण (सपक्ष) में साध्यके साथ विद्यमान और वैधर्म्य उदाहरण (विपक्ष) में साध्याभावके साथ अविद्यमान भी होना चाहिए। फलतः हेतुको त्रिरूप होना आवश्यक है।

काश्यप^३ (कणाद) और उनके व्याख्याता प्रशस्तपादका^४ भी मत है कि जो अनुमेय (साध्य) के साथ सम्बद्ध है, अनुमेयने अन्वित (साधर्म्य उदाहरण—सपक्ष) में प्रसिद्ध है और उसके अभाव (वैधर्म्य उदाहरण—विपक्ष) में नहीं रहता वह हेतु है। ऐसा त्रिरूप हेतु अनुमेयका अनुमापक होता है। इससे विपरीत अहेतु (हेत्वाभास) है और वह अनुमेयको नहीं साधता।

बोध तार्किक न्याय प्रवेशकार^५ भी त्रिरूप हेतुके प्रयोगको ही अनुमेयका साधक बतलाते हैं। धर्मकीर्ति,^६ धर्मोत्तर^७ आदिने उनका समर्थन किया है।

सांख्य विद्वान् माठरने^८ भी त्रिरूप हेतुपर बल दिया है।

इस प्रकार नैयायिक, वैशेषिक, बौद्ध और सांख्य तार्किक हेतुको त्रिरूप मानते हैं।

तर्क-ग्रन्थोंमें त्रिरूप हेतुके अतिरिक्त द्विरूप, चतुरूप, पञ्चरूप, षड्‍रूप और सप्तरूप हेतुकी भी मान्यताएँ मिलती हैं। द्विरूप, चतुरूप और पञ्चरूप हेतुका उल्लेख उद्योतकर,^९ वाचस्पति^{१०} और जयन्त भट्टने^{११} किया और उनका सम्पोषण किया है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त त्रिरूप हेतुकी मान्यताके अलावा ये मान्यताएँ भी नैयायिकोंके यहाँ रही हैं। षड्‍रूप हेतुका धर्मकीर्तिने^{१२} और सप्तरूपका वादिराजने^{१३} सूचन किया है। पर वे उनकी मान्यताएँ नहीं हैं। उन्होंने उनका केवल समालोचनार्थ उल्लेख किया है। फिर भी इतना तो तथ्य है कि ये भी किन्हीं तार्किकोंकी मान्यताएँ रही होंगी।

जैन तार्किकोंका हेतु-प्रयोग

जैन तार्किकोंने केवल एक अविनाभावरूप हेतुको स्वीकार किया है। उनका मत है कि हेतुको साध्याविनाभावी होना चाहिए—उसे, जिसे सिद्ध करना है उसके अभावमें नहीं होना चाहिए, उसके

१. न्यायभा० १।१।३४, ३५।
२. न्यायवा० १।१।३४, ३५; पृ० ११८-१३४।
३. ४. प्रश० भा०, पृ० १००।
५. न्याय प्र०, पृ० १।
६. न्याय वि०, पृ० २२, २३; हेतु वि०, पृ० ५२।
७. न्याय वि० टी०, पृ० २२, २३।
८. सांख्यका० माठरवृ० का० ५।
९. न्यायवा० १।१।३४; पृ० ११९। वही १।१।५; पृ० ४६ तथा ४९।
१०. न्यायवा० ता० टी० १।१।५; पृ० १७४।
११. न्यायकलिका पृ० १४।
१२. हेतुबिन्दु पृ० ६८।
१३. न्याय वि० वि० २।१४५; पृ० १७८-१८०।

२६० : अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन-ग्रन्थ

संज्ञावर्गों ही होना चाहिए। अविनाभावीका अर्थ है—अनुमेयके बिना न होना, अनुमेयके होनेपर ही होना। अन्यथानुपपन्नत्व और अन्यथानुपपत्ति उसीके पर्याय हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ऊपर जो हेतुको द्विरूप, त्रिरूप, चतुरूप, पञ्चरूप, षड्‍रूप और सप्तरूप विभिन्न दार्शनिकोंने बतलाया है उसे स्वीकार न कर जैन विचारक हेतुको मात्र एकरूप मानते हैं। वह एक रूप है अविनाभाव, जिसे अन्यथानुपपन्नत्व और अन्यथानुपपत्ति भी कहा जाता है। समन्तभद्रने^१ आप्तमीमांसामें हेतुका लक्षण देते हुए उसमें एक खास विशेषण दिया है। वह विशेषण है 'अविरोध'। इस विशेषण द्वारा उन्होंने बतलाया है कि हेतु त्रिरूप या द्विरूप आदि हो, उसमें हमें आपत्ति नहीं है, किन्तु उसे साध्यका अविरोधी अर्थात् अविनाभावी होना नितान्त आवश्यक है। अकलङ्कदेवने^२ उनका आशय उद्घाटित करते हुए लिखा है कि 'सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यात्' इस वाक्यके द्वारा समन्तभद्रस्वामीने हेतुको त्रिरूप सूचित किया और 'अविरोधतः' पदसे अन्यथानुपपत्तिको दिखलाकर केवल त्रिरूपको अहेतु बतलाया है। उदाहरणस्वरूप 'तत्पुत्रत्व' आदि असद् हेतुओंमें त्रिरूपता तो है, पर अन्यथानुपपत्ति नहीं है और इसलिए वे अनुमापक नहीं हैं। किन्तु जो त्रिरूपतासे रहित हैं तथा अन्यथानुपपत्तिसे सम्पन्न हैं वे हेतु अवश्य अनुमापक होते हैं। फलतः 'नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते' [आप्त मी० का० ३७] इत्यादि प्रतिपादनोंमें अन्यथानुपपत्तिका ही आश्रय लिया गया है। विद्यानन्दने^३ भी समन्तभद्रके उक्त 'अविरोधतः' पदको हेतुलक्षणप्रकाशक बतलाया है।

पात्रस्वामीका कोई तर्कग्रन्थ यद्यपि उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अनन्तवीर्यके^४ उल्लेखानुसार उन्होंने 'त्रिलक्षणकदर्थन' नामका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचा था, जिसमें त्रिरूप हेतुका निरसन किया गया होगा। तत्त्वसंग्रहकार शान्तरक्षितने^५ तो उनके नामसे उनकी अनेक कारिकाओंको अपने तत्त्वसंग्रहमें उद्धृत भी किया है जो सम्भवतः उक्त 'त्रिलक्षणकदर्थन' की होंगी। शान्तरक्षितके विस्तृत उद्धरणका कुछ उपयोगी अंश निम्न प्रकार है—

अन्यथेत्यादिना पात्रस्वामिमतमाशंकते—

अन्यथानुपपन्नत्वे ननु दृष्टा सुहेतुता। नासति त्र्यंशकस्यापि तस्मात्कलीवास्त्रिलक्षणाः ॥
 अन्यथानुपपन्नत्वं यस्यासौ हेतुरिष्यते। एकलक्षणकः सोऽर्थश्चतुर्लक्षणको न वा ॥
 नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥
 तेनैकलक्षणो हेतुः प्राधान्याद् गमकोऽस्तु नः। पक्षधर्मत्वादिभिस्त्वन्यैः किं व्यर्थैः परिकल्पितैः ॥

इस उद्धरणमें तीसरे स्थानपर स्थित 'नान्यथानुपपन्नत्वं' कारिका जैन न्याय-ग्रन्थोंमें भी पात्रस्वामीके नामसे उद्धृत मिलती है। अतः तत्त्वसंग्रह और जैन ग्रन्थोंमें उपलब्ध यह कारिका पात्रस्वामी-रचित है और उसमें त्रिरूप हेतुका निरास तथा एकरूप (अन्यथानुपपन्नत्व) हेतुका प्रतिपादन है।

१. आप्त मी० १०६।

२. अष्टश० अष्टस०, पृ० २८९; आप्तमी० का० १०६।

३. अष्टस०, पृ० २८९; आप्तमी० का० १०६।

४. सिद्धि वि० ६।२; पृ० ३७१-३७२।

५. तत्त्व सं० का० १३६४, १३६५, १३६९, १३७९; पृ० ४०५-४०७।

सिद्धसेनने^१ भी उपर्युक्त कारिकाकी शब्दावलीमें ही 'अन्यथानुपपन्नत्वं हेतुलक्षणमीरितम्' कहकर अपना हेतुलक्षण निरूपित किया है। 'ईरितम्' क्रियापद द्वारा तो उक्त हेतुलक्षणकी उन्होंने पूर्व प्रसिद्धि भी सूचित की है।

जैन न्यायको विकसित करने और उसे सर्वाङ्ग पूर्ण समृद्ध बनाने वाले भट्ट अकलङ्कदेवने^२ सूक्ष्म और विस्तृत विचारणा द्वारा उक्त हेतुलक्षणको बहुत सम्पुष्ट किया तथा न्यायविनिश्चयमें पात्रस्वामीकी उक्त प्रसिद्ध कारिकाको ग्रन्थकी ३२३ वीं कारिकाके रूपमें देकर उसे अपने ग्रन्थका भी अङ्ग बना लिया है।

उत्तरकालमें कुमारनन्दि,^३ वीरसेन,^४ विद्यानन्द,^५ माणिक्यनन्दि,^६ प्रभाचन्द्र,^७ अनन्तवीर्य,^८ वादिराज,^९ देवसूरि,^{१०} शान्तिसूरि,^{११} हेमचन्द्र,^{१२} धर्मभूषण,^{१३} यशोविजय,^{१४} चारुकीर्ति^{१५} प्रभृति जैन तार्किकोंने उक्त हेतुलक्षणको ही अपने तर्कग्रन्थोंमें अनुसृत करके उसीका समर्थन किया और त्रैलोक्य, पांचरूप्य आदि हेतुलक्षणोंकी भीमांसा की है।^{१६}

इस प्रकार जैन चिन्तकोंने साध्याविनाभावी—अन्यथानुपपन्न हेतुके प्रयोगको ही अनुमेयका साधक माना है। त्रिरूप, पंचरूप आदि नहीं। उसके स्वीकारमें अव्यापकत्व, अतिव्यापकत्व आदि दोष आपन्न होते हैं।

ध्यातव्य है कि यह हेतु प्रयोग दो तरहसे किया जाता है^{१७}—(१) तथोपपत्ति रूपसे और (२) अन्य-

१. न्याया व० का० २१ । २. न्याय वि० का० २।१५४, १५५ ।
३. प्रमाण प० पृ० ७२ में उद्धृत ।
४. षट्ख० धवला ५।५।५, पृ० २८० तथा ५।५।४३, पृ० २४५ ।
५. प्रमाणप० ७२। त० श्लो० १।१३।१९३, पृ० २०५ ।
६. परी० मु० ३।१५ ।
७. प्रमेयक० मा० ३।१५, पृ० ३५४ ।
८. प्रमेयर० मा० ३।११ ।
९. न्या० वि० वि० २।१, पृ० २ । प्र० नि०, पृ० ४२ ।
१०. प्रमा० न० त० ३।११ पृ० ५१७ ।
११. न्यायाव० वा० ३।४३, पृ० १०२ ।
१२. प्रमाणमी० २।१।१२ ।
१३. न्याय० दी०, पृ० ७६ ।
१४. जैन तर्क भा०, पृ० १२ ।
१५. प्रमेय रत्नालं० ३।१५, पृ० १०३ ।
१६. विशेषके लिए देखिए, लेखकका 'जैन तर्क शास्त्रमें अनुमान विचार : ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' शोध प्रबन्ध, प्रकाशक, वीर सेवामन्दिर-ट्रस्ट, डुमराँव कालौनी, अस्सी, वाराणसी-५ (उ० प्र०); १९६९ ।
१७. व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा । अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ।

—परीक्षामुख ३।९५ ।

हेतुप्रयोगस्तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां द्विप्रकारः इति ।

—प्रमाणनयतत्त्वा० ३।२९ । न्यायाव० का० १७ । प्र० मी० २।१।४ ।

२६२ : अगरचन्द नाहुटा अभिनन्दन-ग्रन्थ

थानुपपत्ति रूपसे । तथोपपत्तिका^१ अर्थ है साध्यके होनेपर ही साधनका होना; जैसे अग्निके होनेपर ही धूम होता है । और अन्यथानुपपत्तिका^२ आशय है साध्यके अभावमें साधनका न होना; यथा अग्निके अभावमें धूम नहीं ही होता । यद्यपि हेतुके ये दोनों प्रयोग साधर्म्य और वैधर्म्य अथवा अन्वय और व्यतिरेकके तुल्य हैं । किन्तु उनमें अन्तर है । साधर्म्य और वैधर्म्य अथवा अन्वय और व्यतिरेकके साथ नियम (एवकार) नहीं रहता, अतः वे अनियत भी हो सकते हैं । पर तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके साथ नियम (एवकार) होनेसे उनमें अनियमकी सम्भावना नहीं है—दोनों नियतरूप होते हैं । दूसरे ये दोनों ज्ञानात्मक हैं, जब कि साधर्म्य और वैधर्म्य अथवा अन्वय और व्यतिरेक ज्ञेयधर्मात्मक हैं । अतः जैन मनीषियोंने उन्हें स्वीकार न कर तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिको स्वीकार किया तथा इनमेंसे किसी एकका ही प्रयोग पर्याप्त माना है^३, दोनोंका नहीं ।



१. प्र० न० त० ३।३० । त० इलो० १।१३।१७५ ।

२. वही, ३।३१ ।

३. वही, ३।३३ । न्यायाव० का० १७ । प्र० मी० २।१।५, ६ ।